International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

''निराला के काव्य में द्वन्द्व''

***डॉ॰ सुरेश सरोहा**
एम.ए. (हिंदी), नेट, पीएच॰डी॰,
हिंदी प्रवक्ता,
गाँव व डॉ0 मदीना, रोहतक
(हरियाणा)

समाज में व्यक्ति के सम्मुख कुछ सीमित व निश्चित उद्देश्य होते थे तथा व्यक्ति उनकी पूर्ति के साधनों को जानता था। परन्तु आधुनिक समाज अधिक विकसित एवं जटिल हो गया है। आज मनुष्य की आवश्यकताएँ एवं इच्छाएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। जिसकी एक साथ पूर्ति सामाजिक जीवन में संभव नहीं है। वांछित इच्छाओं की पूर्ति के अभाव में व्यक्ति के अहं को ठेस पहुँचती है। परिणाम स्वरूप पहले भौथ्तक स्तर पर और उसके बाद मानसिक स्तर पर उसे द्वन्द्वात्मक स्थिति का सामना करना पड़ता है। आज प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में तनाव का शिकार है। इसी तनाव को द्वन्द्व की संज्ञा दी गई है।

'द्वन्द्व' जैसा कि इस शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है– पदो परस्पर विरोधी वस्तुओं, व्यक्तियों की टकराहट, संघर्ष, लड़ाई–झगड़ा आदि को कहते हैं। 'हिंदी मानक कोश' में द्वन्द्व का शाब्दिक अर्थ है – 1. जोड़ा, युग्य। 2. ऐसे दो गुण, पदार्थ या परिस्थितियाँ जो परस्पर विरोध हों, जैसे–सुख और दुःख, ताप और शीत। 3. प्राचीन काल में दो योद्धाओं में होनेवाला संघर्ष जिसमें पराजित को विजेता की आज्ञा माननी पड़ती थी, अथवा उसके वश में होकर रहना पड़ता था। 4. दो विरोधी अथवा विभिन्न शक्तियों, विचारधाराओं आदि में स्वयं आगे बढ़ने और दूसरों को पीछे हटाने के लिए होने वाला संघर्ष। 5. मानसिक संघर्ष 6. उत्पात, उपद्रव 7. झगड़ा, बखेड़ा आदि।''[1]

'हिंदी शब्द सागर' में द्वन्द्व के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है – 1. युग्य। दो वस्तुएँ जो एक साथ हों। 2. स्त्री पुरुष या नर मादा का जोड़ा। 3. दो परस्पर विरूद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे शीत उष्मा, सुख–दुःख, भला–बुरा,

पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक इत्यादि।...5. दो आदमियों की लड़ाई। 6. झगड़ा, कलह'' आदि।[2]

निराला अपने काल के सबसे अधिक जागरूक कवि थे। उन्होंने कविता को ही छन्द के बंधनों से मुक्त नहीं किया, बल्कि देश की जनता में भी जागरण का शंख फूँका। परन्तु उनमें क्रांति की विध्वसंक स्वर और विद्रोह की ओजस्विनी वाणी मिलेगी, लेकिन यह अराजकतावादी न होकर रचनात्मक है।

निराला के जीवन में एक ऐसा समय भी आता है जब उन्हें गहरे नैराश्य का अनुभव होने लगता है। इस कालाविध में लिखी गई भक्तिपरक तथा अन्य रचनाओं में करूणा मिश्रित किंतु धारदार राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने जहाँ भी अत्याचार और शोषण दिखाई पड़ा, सक्रिय होकर उनका विरोध भी किया और उनकी जड़ में बैठी हुई व्यवस्था को ललकारा भी।

निराला काव्य को देखने पर मालूम होता है कि कोई भी वाद या विचार उनमें आकस्मिक रूप से नहीं आया है। उनकी प्रारंभिक कृति 'परिमल' में ही रहस्यवाद, प्रगतिवाद, छायावाद, प्रयोगवाद आदि सभी बीज रूप में नीहित हैं। किसान के यथार्थ द्वन्द्व का चित्रांकन करते हुए निराला का विप्लवी स्वर –

''जीर्ण बाहु है, शीर्ण शरीर तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर ! चूस लिया है उसका सार,
हाड–मांस ही है आधार, ऐ जीवन के पारावार।''[3]

स्वाधीनता संघर्ष में किसानों ने निर्भयतापूर्वक भाग लिया। बड़े–बड़े नेताओं के प्रति किसानों की आस्था और उन नेताओं की अवसरवादिता का द्वन्द्व 'बेला' की इस कविता में देखा जा सकता है –

''काले काले बादल छाए, न आये वीर जवाहरलाल।
राह देखने हैं भरमाए, न आए वीर जवाहर लाल।।''[4]

कवि हवेलियों को पाठशालाओं के रूप में परिवर्तित कर सारी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कराने के पक्ष में हैं –

''जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ,

आज अमीरों की हवेली, किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली खोलेंगे अंधेरे का ताला।
एक पाठ पढ़ेंगे.....टाट बिछाओ।''[5]

श्रम का सही मूल्य न मिलने पर निराशा स्वाभाविक है, किंतु कवि किसान को उत्साहित कर रहा है –

''पथ पर बेमौत न मर, श्रम कर, तू विश्रम कर।''

'देवी सरस्वती' में कवि ने बताया है कि जब किसान के श्रम–संवेद से फसल पक कर तैयार हो जाती है, तब उसका लाभ किसान को नहीं, जमींदार और साहूकार को मिलता है –

''जमींदार की बनी, महाजन धनी हुए हैं,
जग मूर्त्त पिशाच, धूर्तगण गुनी हुए हैं।''[6]

सामन्तवादी, पूंजीवादी व्यवस्था में धनी वैभव–विलास में नाना प्रकार के व्यसनों का शिकार बनता है। आर्थिक विपन्नता के कारण निर्धन व्यक्ति भी कुसंस्कारों का शिकार बनता है। वहाँ पारिवारिक जीवन की सारी पूँजी रफू–चक्कर हो जाती है।

''यह है बाजार, सौदा करते हैं सब यार,
धूप बहुत तेज थी, फिर भी जाना था,
दुखिये को सुखिया के लिए तेल लाना था,
बनिये से गुड़ का रुपया पिछला पाना था।।''[7]

निराला ने भिक्षावृति की कठिन समस्या को अपनी छायायुगीन रचनाओं में ही जान लिया था। आज की सरकारें कभी भिक्षुकों को नगर के बाहर और कभी भिक्षावृत्ति को अवैध घोषित करके इसे समाप्त करना चाहती है, किंतु इन सभी कार्यों से समस्या का हल नहीं होगा। भिक्षावृत्ति की जड़ में नीहित आर्थिक विपन्नता को समाप्त करके ही इसे उन्मूलित किया जा सकता है।

''भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता–भाग्य–विधाता से क्या पाते?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।

चाट रहे झूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए।''[8]

कवि दान से भूख को शामिल करने के पक्ष में नहीं हैं। वह भूख की जमीन को ही पाटकर चौरस बनाना चाहता है। ऐसी व्यवस्था लाना चाहता है, जिसमें एक का हक दूसरा छीन न सके।

''भूख अगर रोटी की ही मिटी,
भूख की जमीन पर चौरस पिटी,
और चाहता है वह कौर उठाना कोई,
देखो, उसमें उसकी इच्छा कैसे रोयी।''[9]

कवि भाई–भतीजावाद, जाति–पाँति, धर्म–सम्प्रदाय, ऊँच–नीच, पवित्र–अपवित्र, संगत–असंगत, सत्य–असत्य, दान–लूट आदि में इस विसंगति को अच्छी तरह पहचानता है।

''ऊँट बैल का साथ हुआ है। कुत्ता पकड़े हुए जुआ है।''[10]

इन्हीं असंगतियों के कारण पूँजीवाद ने मानव का बैल–घोड़ा का जोड़ा बनाकर उसे अविश्वसनीय बना दिया है। धनपत्तियों की लबरेज महफिलों के राज को कवि जानता है। नये समाज में इस रहस्य का पता चलना कठिन नहीं होगा। कवि जनाक्रोश की लहर से पूंजीपतियों को होश में लाने का प्रयत्न करता है –

''पेड़ टूटेंगे, मिलेंगे, जोर की आँधी चली।
हाथ मत डालो, हटाओ पैर, किंतु बिल में है।''[11]

'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' कविता में निराला ने जातीय कट्टरता और रूढ़ियों पर जमकर प्रहार किया है –

''एक दिन ब्राह्मणों ने हमें पतित किया था,
शूद्र कहलाये हम, किंतु श्री विवेक और
आप जैसे कृतियों ने धन्य हमें कर दिया।''[12]

कृत्रिमता के विरूद्ध द्वन्द्व 'गर्म पकौड़ी' में कवि ने तेल की पकौड़ी के स्वाद को उत्कृष्टतर बताया है, घी की कचौड़ी में वह स्वाद कहाँ? पूँजीवादी अंतर्विरोध की विकृतियों और आदर्शों पर निराला ने 'प्रेम–संगीत' में प्रहार किया है –

''जैसे कोई अप्सरा,
नाचने लगी हो गलियों से भाव बतलाकर
दोनों हाथ फैलाकर।
मैंने देखा बड़ा मैला मन उसका समाज से,
चोट खाई हुई वह राम जी के राज से
शूद्रों को मिला नहीं जिनसे कुछ भी कही।।''[13]

'कुकुरमुत्ता' तक आते–आते निराला ने जीवन–जगत की सारी वास्तविकताओं की थाह पा ली है। गन्दगी में उगे कुकुरमुत्ते ने उसे कैपिटलिस्ट कहकर अपमानित करना आरम्भ किया। कैप्टिलिस्ट समाज का शत्रु, सम्पत्ति धारक जनता का शोषक के रूप में बताया है।

''अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत, जो पायी खुशबू, रंगो–आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट।।''[14]

निराला को शत्रु–मित्र, कवि–अकवि, आलोचक–पाठक, अमीर–गरीब, सामन्त–साहूकार, लेखक–प्रकाशक, प्रगति–प्रतिक्रिया, आदर्श–यथार्थ, अभिजात–अनभिजात सभी ने पीड़ित किया है। केवल उनके अध्यात्म ने उनका साथ दिया है। आज का पूँजीवादी समाज जन, जन को खा रहा है। जहाँ पूँजीवादी नहीं हैं वहाँ भी जन–जन को खाने से विरत नहीं हुआ है। परिवार में माता–पिता, भाई–बहन या अन्य रिश्तेदार या परिवार व बाहर मित्र इत्यादि एक–दूसरे से म नही मन बहुत उपेक्षा रखते हैं। वस्तुस्थिति कुछ भी हो, वे दूसरे को अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप खरा उतरना देखना चाहते हैं। दूसरे की ओर तनिक से विचलन पर वे बौखला उठते हैं और अन्तर्द्वन्द्व का शिकार हो जाते हैं।

प्रत्येक समाज में उसकी संस्कृति की अहं भूमिका होती है। संस्कृति से आशय किसी समाज विशेष के रीति–रिवाज, मूल्य–नियमों अथवा कानूनों से है। इन मूल्यों की अवहेलना ही सांस्कृतिक द्वन्द्व का कारण अहं है। निराला का समग्र अनुशीलन हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि वे सही मायने में एक क्रांतिकारी कवि हैं। उनकी कविताओं के अनेक स्त्रोत हैं – सामाजिक विसंगति, स्वयं का उनका आत्मसंघर्ष, राजनीतिक आन्दोलन, वर्ग–भेद आदि।

संदर्भ :

1. *रामचन्द्र वर्मा, हिंदी मानक कोश, तीसरा खण्ड, पृ. 136*
2. *डॉ॰ श्यामसुन्दर दास, हिंदी शब्द सागर, पृ. 2401*
3. *निराला, परिमल (बादल राग–6) पृ. 54*
4. *निराला, वही, बेला, पृ. 54*
5. *निराला, वही, बेला, पृ. 78*
6. *निराला, नये पत्ते, पृ. 64*
7. *निराला, अनामिका (तोड़ती पत्थर), पृ. 82*
8. *निराला, परिमल (भिक्षुक) पृ. 125*
9. *निराला, अणिमा, पृ. 9*
10. *निराला, आराधना, पृ. 57*
11. *निराला, बेला, पृ. 75*
12. *निराला, नये पत्ते, पृ. 56–57*
13. *निराला, नये पत्ते, पृ. 46–47*
14. *निराला, कुकुरमुत्ता, पृ. 39*

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018